प्रथम अध्याय

विषय–उपस्थापन

1.1. विषय कथन

1.2 सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण

1.3 विषय परिसीमन

1.4 अध्ययन का महत्त्व

1.5 अध्ययन का अनुक्रम

प्रथम अध्याय
विषय–उपस्थापन

1.1 विषय कथन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज से पृथक् रहकर मनुष्य कभी सामाजिक नहीं बन सकता, यही उसकी नियति है, यही उसका अस्तित्व है। सामाजिक संस्था के रूप में परिवार का योगदान भी व्यक्ति के लिए अतुलनीय एवं प्रशंसनीय है। परिवार से ही उसे प्रस्थिति के कार्य का ज्ञान होता है। परिवार के सदस्यों के आचरण से, पारिवारिक नियमों, परम्पराओं और आदर्शों से व्यक्ति में प्रारम्भ से ही अनुशासित जीवन की भावना का विकास होता है। यही अनुशासन उसे भविष्य में राज्य के नियमों का पालन करने में सामाजिक मानकों का समाज के एक अनुशासित सदस्य के रूप में सम्मान करने में सहायता देता है। 'व्यक्ति' एक ऐसी लघुतम इकाई है, जिसके आगे 'समूह' की धारणा का उद्‌भव एवं विकास होता है। 'व्यक्ति' ही 'परिवार' और आगे 'परिवार' ही 'समाज' नामक संस्था की आधारशिला बनता है। अतः 'व्यक्ति' के बिना 'परिवार' तथा 'समाज' दोनों अधूरे हैं। वस्तुतः समाज और परिवार का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। व्यक्ति, परिवार और समाज, इन तीनों इकाइयों के मध्य होने वाली परस्पर अन्तःक्रियाओं से ही सामाजिक जीवन और सामाजिक सरोकारों की सृष्टि होती है।

1.1.1 समाज

'समाज' का शाब्दिक अर्थ है 'मानव समूह'। सामान्यतः समाज का अर्थ 'सामूहिक जन' से भी लगाया जाता है। समाज की संरचना व्यक्तियों के समुदाय से हुई है। पाश्चात्य समाजशास्त्री राबर्ट ब्रिफोल्ट के मतानुसार, "भाई–चारा, एक उद्‌देश्य की सिद्धि के लिए काम करने वाले, एक भाव से परिचालित व्यक्तियों की, बिना किसी प्रकार के दबाव के, अपनी इच्छा से संचालित संस्था, जिसके सब सदस्य सबके हित के प्रयत्न की सफलता के इच्छुक हों।"[1] शंभूरत्न त्रिपाठी ऐसी

---

1 उद्‌धृत, संपूर्णानन्द (डॉ०), समाजवाद, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, सन्–1960, पृ०सं०–19

संस्था को 'समाज' मानते हैं, "जहाँ जनसमूह एक साथ रहकर अपने अस्तिव की रक्षा कर सकता है।"[1]

अतः समाज मनुष्य की समष्टि का दूसरा नाम है। यह मनुष्य के व्यवहारों से उत्पन्न सामाजिक सम्बन्धों का ताना–बाना है। साहित्यकार भी सामाजिक सम्बन्धों की श्रेणी में ही सम्मिलित है, वह भी समाज की ही उपज है। साहित्यकार के पास वह दृष्टि होती है जो अतीत को पुनर्मूल्यांकित करती है और भविष्य के मानदण्डों को निर्धारित करती है। साहित्यकार समाज की आवाज होता है।

1.1.2 सामाजिक सरोकार

'सामाजिक' शब्द का अर्थ है, "अपने समूह के प्रति जागरूकता।"[2] अर्थात् जो व्यक्ति अपने समाज के प्रति चेतन रहते हैं उन्हें सामाजिक व्यक्ति की संज्ञा दी जा सकती है। 'सरोकार' शब्द का सामान्य अर्थ किसी विषय–वस्तु, और घटना के परस्पर सम्बन्ध से है। किसी भी व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण तथा चिंताजनक विषय अर्थात् जो शोचनीय हैं, विचारणीय हैं, जिसमें वह स्वयं शामिल है, वही उसके सरोकार होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो सरोकार से अभिप्राय व्यक्ति की चिंताओं, महत्त्व तथा रुचि के विषयों और उससे जुड़े, उसे प्रभावित करने वाले विषयों तथा वस्तुओं से, उसके सम्बन्धों से है।

साहित्यिक संदर्भ में सामाजिक सरोकार का आशय है कि किसी रचना अथवा कृति का सामाजिक प्रयोजन क्या है ? वह समाज से किस प्रकार से सम्बद्ध है अथवा वह समाज के किन–किन पक्षों, रूपों, आयामों, मुद्दों एवं सरोकारों को किस रूप में चित्रित करती है।

1.1.3 साहित्यकार एवं सामाजिक सरोकार

साहित्यकार समाज का प्रतिनिधि होता है। वह जिस समाज में रहता है, उस सामाजिक परिवेश एवं वातावरण से निश्चित रूप से प्रभावित होता है। विशिष्ट प्रतिभा एवं संवेदनशीलता से युक्त होने पर भी वह सामाजिक यथार्थ से निरपेक्ष नहीं हो सकता। सामाजिक सरोकारों से सम्पृक्त रहते हुए जब वह साहित्य की

---

1 त्रिपाठी, शंभूरत्न, समाजशास्त्र के मूलाधार, किताबघर प्रकाशन, कानपुर, सन्–1975, पृ०सं०–33

2 तोमर, रामबिहारी सिंह, समाजशास्त्र के मूलतत्त्व, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, सन्–1975, पृ०सं०–62

सर्जना करता है, तब वह अपने या अपने आस–पास के भोगे हुए यथार्थ में कल्पना का संयोग कर अपनी दृष्टि के अनुरूप रचना कर उसमें अपना स्वर भर देता है। इस संदर्भ में विश्वनाथ तिवारी का वक्तव्य है, "लेखक का रचना दायित्व और उसका सामाजिक दायित्व दोनों एक–दूसरे में घुले – मिले होते हैं। वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है उतना ही अपने चारों ओर की जिन्दगी के प्रति भी। अन्दर और बाहर के दोनों ही संसार उसके भीतर एक हो जाते हैं।"[1]

साहित्य एक सृजनात्मक कला है, जिसमें शब्दार्थों, भावानुभूतियों एवं विचारधाराओं के सुष्ठु प्रयोग द्वारा विशिष्ट अभिव्यक्ति की जाती है। कथा सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द द्वारा 'प्रगतिशील लेखक – संघ' के लखनऊ अधिवेशन (सन् 1936) में सभापति के आसन से दिए गए भाषण का मत उल्लेखनीय है, जिसमें उन्होंने साहित्य को स्पष्टतः मानवीय एवं सामाजिक सरोकारों से जोड़ दिया है। उनके शब्दों में, "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो – जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य विषयक विचार भी दृष्टव्य है। उनके अनुसार, "जो साहित्य अपने – आपके लिए लिखा जाता है, उसकी क्या कीमत है, मैं नहीं कह सकता; परंतु जो साहित्य मनुष्य – समाज को रोग – शोक, दारिद्रय – अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चत ही अक्षय निधि है।"[3]

साहित्य का सृजन सामाजिक सरोकारों से जुड़कर ही प्रतिष्ठित होता है। "साहित्य का सरोकार मनुष्य की संस्कारिता का निर्माण करना या उसका परिमार्जन करना है। वह मनुष्य को समाज की इकाई के रूप में ही स्पर्श करता है और उसके संवेगात्मक व्यक्तित्व को स्पर्श करता है।"[4]

---

1 तिवारी, विश्वनाथ, रचना के सरोकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1987, पृ०सं०–32

2 सिंह, कुंवरपाल, सव्यसाची (संपा०), प्रेमचन्द, भाषा प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1980, पृ०सं०–23

3 द्विवेदी, हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, सन्–1962, पृ०सं०–167

4 वात्स्यायन, सच्चिदानन्द (संपा०), साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सन्–1985, पृ०सं०–48

कोई भी साहित्य केवल तभी प्रासंगिक, समीचीन एवं शाश्वत् कहला सकता है, जब वह अपने सामाजिक परिवेश, जीवन – पद्धति एवं समस्याओं को प्रतिबिम्बित करता है तथा उसके प्रति पाठक की संवेदनाओं को जागृत करने का सामर्थ्य रखता हो। भारतेन्दुयुगीन साहित्य में जो एकरसता और जड़ता आ गयी थी, मुंशी प्रेमचन्द ने उसे तोड़ा। उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती परम्परा, जो नैतिकता, धार्मिकता, सुधार और आदर्शवादिता के कुहासे में घुटन महसूस कर रही थी, उसे खुली हवा दी। प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य को सामाजिक– आधार से जोड़ा और सोद्देश्यता तथा गम्भीरता भी प्रदान की। प्रेमचन्द के पश्चात् साहित्यगत सामाजिक सरोकारों की, सोद्देश्यता की यह धारा यशपाल, अमृतलाल नागर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, रांगेव राघव, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ 'रेणु', मोहन राकेश, भीष्म साहनी, राही मासूम रजा, श्रीलाल शुक्ल आदि की रचनाओं में पल्लवित पुष्पित होती हुई अबाध गति से बहती रही है। महिला कथाकारों में मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान आदि की कृतियों का मुख्य आधार भी सामाजिक सरोकार ही रहे हैं। आठवें दशक की सशक्त रचनाकार मृणाल पाण्डे का साहित्य भी यथार्थ सापेक्ष तथा उदात्त मानवीय मूल्यों एवं सामाजिक सरोकारों से सम्बद्ध है।

प्रस्तुत शोध – प्रबंध में कथाकार मृणाल पाण्डे के कथा–साहित्य में चित्रित सरोकारों को विश्लेषित करने का प्रयास किया जाएगा।

1.1.4 मृणाल पाण्डे के कथा – साहित्य में सामाजिक सरोकार

एक खास और नये किस्म के तेवरों से गढ़ा – संवरा हुआ रचना – संसार है – 'मृणाल पाण्डे' का। अपने कथानक और पात्रों के साथ इनकी गहरी और बौद्धिक पकड़ है। संदर्भित परिवेश और उस परिवेश से जूझता टकराता चरित्र तथा उस चरित्र के घनत्व को बनाने वाली टंकारती–सी भाषा उनके कथा–लेखन की अपनी शाख्सियत और अलग ही पहचान बनाती है।

मृणाल पाण्डे ने सन् 1977 में 'विरुद्ध' उपन्यास की रचना के साथ उपन्यास क्षेत्र में कदम रखा। उपन्यास में लेखिका ने पुरुष–प्रधान समाज में स्त्री द्वारा अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की तलाश, मानव–समाज में बढ़ते अहंभाव और उसके

परिणामस्वरूप सम्बन्धों में उत्पन्न हुई विकृतियों और विसंगतियों का यथार्थवादी दृष्टि से निरूपण किया है।

'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास में वर्ण्य–विषय का आधार समाज है। उपन्यास में आमा पात्र के माध्यम से पहाड़ी कस्बे की एक जाति विशेष के समूचे इतिहास को अंकित किया गया है तथा जातिगत विशेषताएँ जिनमें – सामाजिक जीवन, मानवीय वृत्तियाँ, विनोदभाव, नर–नारी सम्बन्ध, समाज में नारी की स्थिति आदि को स्वाभाविकता से उकेरा गया है।

'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' उपन्यास में नारी की सामाजिक स्थिति को केन्द्रीय विषय बनाया गया है। आज भी समाज में नारी की जीने की एक विशेष नियमावली है तथा उसके निर्धारित दायरे हैं, जिसका उल्लंघन करने पर वह प्रताड़ित होती है या तिरस्कृत होती है। उपन्यास में, 'ललिता' ऐसा नारी पात्र है जो इस लक्ष्मण–रेखा के इस दायरे को लांघने का साहस रखती है। विद्रोह की यह भावना पूर्णतः यथार्थवादी है।

उपन्यास 'रास्तों पर भटकते हुए' में दिल्ली के महानगरीय परिवेश में आधुनिक युग में मानवीय सम्बन्धों की मृत्यु, सर्वव्यापी भ्रष्टाचार, धन और सत्ता की दौड़ में मानवीय मूल्यों को बिल्कुल दरकिनार कर राक्षसी भूमिका में जीने वाले डॉक्टरों, उद्योगपतियों, राजनेताओं और पत्रकारों का चित्रण किया गया है।

मृणाल पाण्डे के उपन्यास 'हमका दियो परदेस' में 'टीनू' नामक बच्ची के मन में परम्परागत बंधनों के विरुद्ध एक चिंगारी है जो निरन्तर सुलगती रहती है। यह उपन्यास लैंगिक असमानता के प्रश्न को समाज के समक्ष उभारता है।

'अपनी गवाही' उपन्यास में पत्रकार कृष्णा के माध्यम से पत्रकारिता जगत् की विड़म्बनाओं को प्रत्यक्षदर्शी की भाँति लेखिका ने उजागर किया है।

मृणाल पाण्डे की कहानियाँ भी विविध विषयों पर आधारित हैं। उनकी कहानियों में तीव्र गति से परिवर्तित होता परिवेश, सामाजिक जीवन, विघटित मानवीय मूल्य, पारिवारिक तनाव, अकेलेपन की त्रासदी, युवा–विमर्श, पृथकीकरण की सामाजिक प्रक्रियाएँ, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में असंतुलन, नारी– विमर्श आदि विषय सामाजिक सरोकारों की परिधि में आते हैं। लेखिका की चर्चित कहानी 'कोहरा और

मछलियाँ' आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नारी–जीवन, अकेलापन और आधुनिक समाज की विसंगतियों पर प्रकाश डालती है। कहानी में नायिका को परिस्थितियों के कारण अपने परंपरागत आदर्शों एवं नवमूल्यों को बदलना पड़ता है। वह अपने विवाह को 'सेफ्टी कैप' समझती है, जिसे पहनकर वह कहीं भी पति के मित्रों के साथ मित्रता कर सकती है।

'दरम्यान', 'पितृदाय', 'दोपहर में मौत', 'चिमगादड़ें' आदि कहानियाँ अर्थ के वर्चस्व के कारण मानवीय सम्बन्धों के बिखरने की कथा कहती हैं। 'एक स्त्री का विदागीत', 'कुनू', 'परियों का नाच ऐसा' कहानियाँ पहाड़ के जीवन की विविध छवियाँ प्रस्तुत करती हैं। 'एक स्त्री का विदागीत' कहानी बेहद आकर्षक है। कहानी वर्तमान संघर्ष से भरी जिन्दगी के चित्र प्रस्तुत करती है। पुरातन मान्यताओं और नवीन मूल्यों का द्वन्द्व, कहानी के अत्यंत सशक्त पक्ष हैं। सावित्री के माध्यम से अतीत को उजागर किया गया है तथा सुषमा के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी को। 'लक्का–सुन्नी', 'दूरियाँ' तथा 'हमसफर' तीनों ही कहानियों में पारिवारिक सम्बन्धों के बदलते संदर्भों को बहुत सूक्ष्मता और कुशलता से प्रस्तुत किया गया है। मृणाल पाण्डे की कहानियों का कथ्य उच्च एवं मध्यवर्गीय परिवारों से सम्बन्ध रखता है।

मृणाल पाण्डे के लिए पत्रकारिता का कार्यक्षेत्र कहीं भी साहित्य–सृजन में बाधक नहीं बना बल्कि वह तो सहायक ही सिद्ध हुआ है। वह समाज के हर वर्ग से प्रत्यक्षतः जुड़ पायी हैं। जिससे उन्होंने सामाजिक जीवन को अपेक्षाकृत अधिक गहराई से देखा, समझा, यही कारण है कि उनका साहित्य समाज के सरोकारों का सच्चा विश्लेषण करता है।

1.2 सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण (काल क्रमानुसार)

चण्डी प्रसाद जोशी — हिन्दी उपन्यास : सामाजशास्त्रीय विवेचन, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, सन्–1962

लेखक ने पुस्तक में बीसवीं सदी के उपन्यासों में युगीन सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक चेतना के विकास का विश्लेषण किया है। इन उपन्यासों में चित्रित सामाजिक समस्याओं को भी रेखांकित किया गया है।

डॉ० स्वर्णलता **स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, सन्–1975**

प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका ने समाज एवं समाजशास्त्र के अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए दोनों के विशिष्ट अंतर तथा स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में बदलते जीवन मूल्यों के आधार पर टूटते – बिखरते पारिवारिक जीवन को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास साहित्य में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सहायक घटकों का उल्लेख भी इस पुस्तक में किया गया है।

डॉ० सुमित्रा त्यागी **हिन्दी उपन्यास : आधुनिक विचारधाराएँ, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1978**

सात अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक समाजवादी, मनोविश्लेषणवादी, व्यक्तिवादी, अस्तित्ववादी उपन्यासों की विवेचना प्रस्तुत करती है। लेखिका ने व्यक्ति के विघटित व्यक्तित्व का भी वर्णन इसमें किया है।

सरिता सूद **महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रेम का स्वरूप, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1978**

लेखिका ने पुस्तक को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है। इसमें समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रेम के स्वरूप को उजागर किया गया है। लेखिका ने पति – पत्नी, तीसरा आदमी, प्रेमी – प्रेयसी आदि के सम्बन्धों के माध्यम से प्रेम की समस्या को कहानीकारों की कहानियों के संदर्भ में उठाया है तथा नारी की सहजता, कोमलता एवं भावुकता को भी व्यक्त किया है।

डॉ० मधु सन्धु **साठोत्तरी महिला कहानीकार, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1984**

मधु सन्धु ने पुस्तक में महिला कहानीकारों की कृतियों का विवेचन एवं विश्लेषण किया है। साथ–ही–साथ प्रत्येक कहानीकार का जीवन एवं साहित्यिक परिचय तथा उनकी कदम – कदम यात्रा और उनके योगदान को भी चित्रित किया है।

डॉ० पुष्पपाल सिंह **समकालीन हिन्दी कहानी, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, सन्–1984**

इस कृति में समकालीन हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि तथा समकालीनता की अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है। समकालीन कहानी के सरोकारों में व्याप्त सामाजिक चिंताएं, मानवीय चरित्र और सम्बन्धों की विवृत्ति तथा समकालीन कहानी में शीर्ष कथाकारों के विषय में भी विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

डॉ० शीलप्रभा वर्मा **महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ, विद्या विहार, कानपुर, सन्–1987**

उपन्यास के क्षेत्र में महिला कथाकारों के अप्रतिम योगदान को इस कृति द्वारा उद्घाटित किया गया है। इसमें सामाजिक जीवन के अनेक स्तर प्रस्तुत किये गये हैं। प्रेम–विवाह, दाम्पत्य–जीवन आदि के चित्रण के साथ–साथ इन लेखिकाओं की आर्थिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को भी समाज के संदर्भ में देखा व परखा गया है।

डॉ० किरण बाला **समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, सन्–1988**

प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर युग तथा स्वातन्त्र्योत्तर युग के कथा–साहित्य को समाजवादी चेतना के रूप में स्पष्ट किया गया है। इसमें समकालीनता का अर्थ, परिभाषा एवं व्याख्या प्रस्तुत की गई है। समकालीन हिन्दी कथा – साहित्य में अभिव्यक्त समाजवादी चेतना, राजनीतिक चेतना, आर्थिक चेतना, धार्मिक चेतना के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है।

डॉ० शशि जैकब **महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, सन्–1989**

महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में विविध विचार, जैसे – सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि को इस पुस्तक में संजोया गया है। ये विचार अत्यन्त यथार्थवादी हैं तथा समाज से सम्बद्ध हैं।

उषा मंत्री — **हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सन्–1991**

इस पुस्तक में लेखिका ने व्यक्ति के व्यक्तित्व को उसके पारिवारिक सम्बन्धों द्वारा व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। संयुक्त परिवार का विघटन एवं नाभिक परिवारों का स्वरूप भी दर्शाने का प्रयास किया गया है।

राम आहूजा — **सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, सन्–1994**

यह कृति 17 अध्यायों में विभाजित है। इसमें भारत की सामयिक सामाजिक समस्याओं का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में परीक्षण करने का प्रयास किया गया है।

डॉ० नीरजा सूद — **समकालीन महिला उपन्यास लेखन एक अन्तर्दृष्टि, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, सन्–2006**

डॉ० नीरजा सूद ने पुस्तक में समकालीन विदुषी लेखिकाओं के उपन्यास लेखन को आधार बनाया है। चार अध्यायों में विभाजित इस पुस्तक में प्रेम, विवाह, अभिभावक और संतान, अभिवृत्तियाँ एवं अन्तःक्रियात्मक सम्बन्धों को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महिला लेखन नारी विषयक समस्याओं से जुड़कर भी सामाजिक सरोकारों से अछूता नहीं रहा है।

डॉ० मनमोहन सम्मी — **भीष्म साहनी की कहानियों में सामाजिक सरोकार, यूनीस्टार बुक्स प्रा० लि०, चण्डीगढ़, सन्–2008**

भीष्म साहनी के कहानी–संसार का गंभीर, विशद्, सांगोपांग और सम्यक् अध्ययन इस कृति में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में भीष्म साहनी की कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक सरोकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शोध – कार्य के लिए यह कृति सहायक सिद्ध हो सकती है।

डॉ० राजकुमारी वर्मा **महिला सहित्यकारों का नारी–चित्रण, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, सन्–2009**

लेखिका ने पुस्तक में नारी के सामाजिक महत्त्व एवं स्वरूप को चित्रित किया है। हिन्दी कहानी में नारी की स्थिति को पारिवारिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी निरूपित किया गया है।

1.3 विषय परिसीमन

प्रत्येक शोध–कार्य का परिसीमन उसके तलस्पर्शी अध्ययन एवं मूल्यांकन के लिए अनिवार्य होता है। शोध–विषय के सटीक एवं स्पष्ट अध्ययन के लिए उसकी सीमाओं को निर्धारित करना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है ताकि किसी निश्चित दृष्टिकोण के आलोक में उसके सही रूप को विवेचित एवं विश्लेषित करते हुए निष्कर्ष प्रतिपादित किये जा सकें।

प्रस्तुत शोध – प्रबंध का विषय है –

"मृणाल पाण्डे के कथा– साहित्य में सामाजिक सरोकार"

प्रस्तुत शोध की सीमा इस प्रकार है –

– मृणाल पाण्डे के लेखन की परिधि विस्तृत है, जिसमें – उपन्यास, कहानी, नाटक, स्त्री – विषयक पुस्तकें, लेख आदि सम्मिलित हैं।

– इस शोध – कार्य के अन्तर्गत केवल उनके उपन्यास और कहानी – साहित्य का अध्ययन किया जाएगा।

1.4 अध्ययन का महत्त्व

प्रत्येक शोध–कार्य का महत्त्व अज्ञात तथ्यों की खोज या ज्ञात तथ्यों की नवीन व्याख्या तथा ज्ञान के विस्तार से सम्बद्ध है। प्रस्तुत शोध – कार्य में मृणाल पाण्डे के कथा – साहित्य में भारतीय समाज के आधारभूत स्वरूप तथा उसमें आ चुके परिवर्तनों तथा पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक सरोकारों का विस्तृत रूप से मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाएगा। इस नवीन और अछूते विषय पर किया गया कार्य नया प्रयास होगा। शोध क्षेत्र में विषय नवीनता और कार्य की मौलिकता स्वयं अध्ययन के महत्त्व की ओर संकेत करती है।

1.5 अध्ययन का अनुक्रम

प्रस्तुत शोध – विषय आठ अध्यायों में विभक्त है –

प्रथम अध्याय	:	विषय उपस्थापन
द्वितीय अध्याय	:	सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
तृतीय अध्याय	:	मृणाल पाण्डे : साहित्य सृजन
चतुर्थ अध्याय	:	पारिवारिक आधार
पंचम अध्याय	:	सामाजिक व्यवस्था
षष्ठ अध्याय	:	सांस्कृतिक प्रतिमान
सप्तम अध्याय	:	सामाजिक परिवर्तन बनाम स्त्री की बदलती रूढ़ छवि
अष्टम अध्याय	:	मृणाल पाण्डे की भाषा–शैली
उपसंहार		